IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में मानवतावादी एवं समतामूलक समाज सम्बन्धी वैचारिक चिन्तन की अभिव्यक्ति

शैलेंद्र कुमार चौधरी[1], डॉ. श्याम सुंदर कौशिक[2]
श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय
रिसर्च स्कोलर[1] व शोध निर्देशक[2]

मानवतावादी दृष्टिकोण प्रगतिषील कविता की प्रथम शर्त है। प्रगतिषील सिद्धान्तों में मानवतावाद की परिभाषा व्यापक होती है और इसके मूल में मानव जाति से इतर का चेतन–अचेतन लोक भी शामिल रहता है। कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में उनके मानवतावादी दृष्टिकोण एवं समतामूलक समाज की स्थापना से सम्बन्धित विचारों को विस्तार से अभिव्यक्ति मिली है। उनकीशुरूआती रचनाओं को छोड़कर पश्चातवर्ती कविताओं में उनका यह दृष्टिकोण उनके काव्य में पूरी वैचारिक परिपक्वता के साथ चित्रित हुआ है।केदार के इस दृष्टिकोण की जड़ें मार्क्सवाद से जुड़ी हैं क्योंकि कवि वैचारिक रूप से साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुगामी थे। मार्क्सवाद के विस्तृत अध्ययन से उन्होंने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की धारणा समझा और यथार्थवादी, समाजवादी और मानवतावादी समझ विकसित की। केदार के मानवतावादी दृष्टिकोण में समाज का गरीब किसान, खेतीहर मजदूर, फैक्ट्री के श्रमिक, समाज के उपेक्षित लोग, जमींदार, सूदखोर महाजन, सरकारी तंत्र आदि सब कुछ हैं और इनके जीवन यथार्थ का वर्णन कवि ने प्रगतिषील मानवतावादी नजरिये से किया है।

केदार के काव्य में व्यक्तिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति नहीं है अपितु वे व्यक्ति चेतना के स्थान पर सामाजिक चेतना को कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए मानवीयता और मानवीय मूल्यों की रक्षा करना आवष्यक मानते हैं। उनके काव्य में अभिव्यक्त इसी पक्ष का विवेचन करते हुए लिखा गया है – 'आखिर केदारजी की कविता का बुनियादी सरोकार मनुष्य ही तो है। वह मनुष्य अमूर्त, अपरिभाषित अथवा देषकाल और वर्ग से निरपेक्ष नहीं है। देषकाल और वर्ग से परे उनके लिए मनुष्य की सत्ता नहीं है। व्यक्तिवादी रचनाकार जहां ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों की तरफ से आंखें मूंदकर सार्वभौम मनुष्यता का राग अलापते हैं, वहां केदार ठोस ऐतिहासिक मनुष्य को जगाते हैं। अपनी कविताओं में उस भारतीय मनुष्य को स्वर देते हैं, जो आजादी से पहले और बाद भी तिहरे शोषण चक्र में पिस रहा है। जो लाख मुसीबतें झेलकर भी जिन्दा है और संघर्ष कर रहा है। वे इतिहास की अग्रगामी ताकत को, किसान–मजदूरों को सक्रिय सहानुभूति देते हैं और उसी नजरिये से मनुष्य की समस्याओं पर विचार करते हैं। इस दृष्टि से वे जब विचार करते हैं तो उन्हें लगता है कि सन् 47 में जो सत्ता का हस्तांतरण हुआ, उनमें एक खास वर्ग को आजादी मिली, मेहनतकष वर्ग तो पददलित ही रहा।'[1]

केदार अपनी वैचारिक प्रगतिबद्धता के अनुसार समाज के सर्वहारा वर्ग के पक्षधर हैं और उनके जीवन–संत्रास, पीड़ाओं, दुःखों और विभिन्न समस्याओं पर अपने काव्य में सहानुभूतिपूर्वक प्रकाष डालते हैं। उन्होंने इस स्थिति के लिए शोषक–वर्ग कोउत्तरदायी माना और अपने काव्य में शोषणपरक व्यवस्था की कटु आलोचना की है।

केदार ने प्रगतिषील काव्य के सिद्धांतों से जुड़े विषयों जैसे दरिद्रता, कर्ज की समस्या, सामाजिक वैषम्य, परम्परागत रूढ़ियों और अंधविष्वासों आदि पर अनेक कविताएं लिखी हैं। ऐसी कविताओं में चन्दू, चैतु, रनिया, मुल्लो अहिरन आदि रचनाएं उल्लेखयोग्य हैं जिनमें साधारण जन की पीड़ाओं तथा दुःखमय जीवन का यथार्थ अंकन किया गया है। कवि जब समाज में यह देखते हैं कि यहां एक व्यक्ति खेत को जोतकर फसल बोता है और उन्हें अपना खून–पसीना देकरपैदा करता है, तो दूसरा आधी रात में उसकी इस मेहनत की उपज को जबरन अपनी बना लेता है। इस घटना को कवि विधि का विधान नहीं मानते हैं बल्कि युग का बड़ा अभिषाप मानते हैं। वे इस शोषण आधारित व्यवस्था में प्रत्यक्ष अनुभव देखते हैं कि एक व्यक्ति रोटी के लिए तड़पता हुआ अधपेटा रहता है तो दूसरी ओर शोषक लोग घी–षक्कर का आनंद लेते हैं। कवि समाज में व्याप्त इस आर्थिक वैषम्य को समाप्त करके मानवीयता आधारित व्यवस्था की स्थापना चाहते हैं–

'एक रोटी के लिए तड़फे
सदा अधपेट खाए
दूसरा घी–दूध–षक्कर का मजा भरपेट पाए
मैं इसे विधि नहीं, अभिषाप जग का जानता हूं।'[2]

कवि ने समाज में यह प्रत्यक्ष देखा कि समाज का एक वर्ग दूसरों के श्रम पर सुख भोग रहा है और उसे समस्त सुविधाएं प्राप्त हैं। कवि इस सुविधाभोगी शोषक समाज को दरिद्रता के दलदल में फंस चुके सर्वहारा वर्ग का कट्टर शत्रु मानता है। इस शोषक वर्ग के लोग देखने में तो सद्पुरूष लगते हैं पर कवि की दृष्टि में ये असल में दुष्ट और दानव हैं। कवि कष्ट भोगने वाले वर्ग को मानवता का संरक्षक मानते हुए लिखते हैं –

'यही लोग तो
सच्चे अर्थों में
मानव हैं
मानवता के संरक्षक हैं।'[3]

भारतीय समाज की परम्परा में मानवीय मूल्यों पर सदैव से बल दिया गया है पर अब दयनीय हो चली स्थिति को देखकर कवि बड़े व्यथित हैं। उनकी दृष्टि में स्वार्थ और लोभ आसुरी शक्ति के परिचायक हैं। मानवता के प्रतीक तो स्नेह और त्याग के भाव हैं। कवि ने अपने काव्य में आसुरी प्रवृत्तियों को त्यागकर स्नेह और त्याग को अपनाने का आह्वान किया है। वे मानव में निष्क्रियता के भाव को समाज की प्रगतिषीलता में बाधक मानते हैं और सक्रियता को अपनाने की बात करते हैं। केदार स्वस्थ सामाजिक जीवन की संरचना करना चाहते हैं और उनकी दृष्टि का फलक सामाजिक जीवन में व्याप्त विकृत्तियों तथा विरोधों को आंककर वास्तविक सत्य तक पहुंचता है।

कवि चाहते हैं कि सामाजिक विषमताएं समाप्त हों और मानव तथा मानव के मध्य बंधुता का भाव जगे। वे अनेक सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं को जड़ता का सूचक मानते हुए उन्हें सामाजिक प्रगति में बाधक मानते हैं और उन्हें समाप्त कर उनके स्थान पर स्वस्थ मानसिकता से भरी परम्पराओं को

समाज में स्थापित करना चाहते हैं। केदार की अनेक कविताओं में धार्मिक पाखण्डों पर करारा प्रहार किया गया है। उनका काव्य समाज में व्याप्त पाखण्ड, अंधश्रद्धा, अंधविष्वास, तथ्यहीन रीति–रिवाज, जड़ मान्यताओं के पुरजोर विरोध का उत्कृष्ट उदाहरण है। केदार की दृष्टि में पाप–पुण्य, शुभ–अषुभ आदि अंधश्रद्धा के परिचायक हैं। वे एक कविता में लिखते हैं –

'कोई नहीं जानता
कौन कहां पहुंचता है
किसको मिलता है स्वर्ग
किसको मिलता है नर्क।'[4]

केदार के काव्य में ईष्वर के अस्तित्व, ईष्वर एवं सृष्टि के निर्माण से जुड़ी धारणाओं को अनेक स्थानों पर पाखण्ड सिद्ध किया गया है। वे मूर्तिपूजा जैसी तर्कहीन धार्मिक परम्पराओं की बखिया उधेड़ते हुए लिखते हैं कि जो मूर्ति स्वयं की रक्षा नहीं कर सकती, उससे हम अपनी रक्षा करने की आषा क्यों रखें –

'छोटी सी देवमूर्ति
आले में रक्खी थी।
बेचारी औचक्क ही
चूहे के धक्के से
दांसा के पत्थर पर
नीचे गिर टूट गयी।' (गुलमेंहदी, पृ. 33)

केदार के काव्य में पाखण्डी और अधर्मी आचरण करने वालों पर करारा व्यंग्य किया गया है। 'चित्रकूट के यात्री' शीर्षक कविता में कवि गठरी पर गुड़ और चना–सत्तू लेकर यात्रा कर रहे लोगों के बारे में कहते हैं कि व्यक्तिगत जीवन में ये दिनभर अधर्मी आचरण करते हैं, परनारी और परसम्पति को हरते हैं, धर्म के नाम पर शोषण करते हैं पर अब यात्रा के आडम्बर कर रहे हैं। वे लिखते हैं –

'चित्रकूट के बौड़म यात्री
सेतुआ, गुड़ गठरी में बांधे
गठरी को लाठी पर साधे,
लाठी को कांधे पर टांगे,
दिनभर अधरम करने वाले
परनारी को ठगने वाले
परसम्पति को हरने वाले।'[5]

केदार का यह मानना है कि इस सृष्टि को ईष्वर ने नहीं, अपितु मानव ने अपने श्रम के बूते बनाया है। उनकी दृष्टि में ईष्वर को जन्म देने वाला भी आदमी ही है जिसने अपनी कौतूहल भावना के चलते उसे सर्वषक्तिमान रूप प्रदान किया है। इस आधार से तो ईष्वर आदमी का पुत्र है। वे आदमी को ईष्वर से महान बताते हुए कहते हैं –

'ईष्वर को आदमी ने जन्म दिया
ईष्वर ने आदमी को नहीं दिया
ईष्वर से मतलब क्या आदमी के जन्म से
आदमी तो जीवन विकास का प्राणी है।'[6]

हालांकि यहां यह नहीं कहा जा सकता कि केदार ने अपने काव्य में धार्मिकता का पूर्णतया विरोध किया है। अनेक पौराणिक आख्यानों को उन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति में सम्मिलित करते हुए उनके माध्यम से कई संदेष भी दिए हैं। राम द्वारा षिव धनुष तोड़ने को उन्होंने जड़ परम्पराओं का ध्वंस माना है। इस प्रकार केदार ने लोकजीवन में प्रचलित धारणाओं को पूर्णतया नकारा नहीं है, अपितु उनका प्रयोग भी लोगों को वैचारिक संदेष देने में किया है।

केदार ने अपने काव्य में प्रेम, सौंदर्य, प्रकृति और ग्राम्यजीवन को चित्रित करने के साथ–साथ नगरीय व्यवस्था, उसकी सभ्यता और मानवीय मूल्यों की अवहेलना आदि पर कठोर व्यंग्य किए हैं। उनकी कविताओं में मानव और उससे जुड़ी प्रत्येक वस्तु का वर्णन मिलता है। वे मानवीय शक्ति और साहस के बलबूते नया समाज एवं नए विष्व की रचना करने की परिकल्पना करते हैं। यही मानवीय संवेग उनके काव्य का प्रमुख आधार है।

प्रगतिशील कवियों ने मार्क्सवादी सिद्धान्तों को आधार बनाकर समाज के शोषित तबकों के प्रति सहानुभूति का भाव रखा है और उनके काव्य में शोषक वर्ग के प्रति घृणा अभिव्यक्त हुई है। शोषक वर्ग के कारण समाज में बड़े पैमाने पर विषमता उत्पन्न होती है और श्रमजीवी वर्ग पषुओं की भांति जीवन जीने को विवष हो जाता है। शोषक वर्ग में पूंजीपति, व्यापारी, महाजन और नेता आदि आते हैं। इनके वर्गभेदी आचरण के कारण समाज में विषमताएं, विसंगतियों तथा विकृतियों का जन्म होता है। इस यथार्थ को समझते हुए प्रगतिषील कवि समाजवाद को स्थापित करते हुए इन विषमताओं को मिटाने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार के साहित्यिक प्रयासों में कवि केदार कहीं भी पीछे नहीं रहे हैं और उन्होंने समाज के पददलित, पीड़ित और शोषित वर्ग की व्यथा को अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है। उनके काव्य में खेत में काम करने वाले मजदूरों से लेकर फैक्ट्रियों में कार्य करने वाले श्रमिकों का जीवन संघर्ष पूर्ण संवेदना के साथ वर्णित किया गया है। कवि गांवों से बड़ा प्रेम करते हैं जो उन्हें यथार्थ स्थिति प्रकट करने के लिए बाध्य भी करता है। वे गांव के किसान के श्रम को सम्मान के साथ देखते हुए लिखते हैं –

'मेरे खेत में हल चलाता है,
फाड़ कलेजा गड़ जाता है,
तड़–तड़ धरती तड़काता है,
राह बनाता बढ़ जाता है,
मेरे खेत में हल चलाता है।'[7]

कवि केदार अपनी कविताओं में बुंदेलखण्ड की धरती, वहां के किसान और मजदूरों का यथार्थ चित्रण करते हैं। 'मजदूर' शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा है कि मजदूर दिन–रात कड़ा परिश्रम करते हैं पर उनका जीवन पषु से भी बदतर है। वे धरती पर सोने को बाध्य हैं और दुर्गंध से भरे वातावरण में रहने को मजबूर हैं। कवि ने देखा कि कपड़ा बनाने वाले मजदूर स्वयं के तन पर कपड़ा धारण नहीं कर पाते। कवि इस विषम स्थिति का इस प्रकार वर्णन करता है –

'हमारी जिन्दगी के दिन
बड़े संघर्ष के दिन हैं।
हमेषा काम करते हैं
मगर दाम कम मिलते हैं।'[8]

कवि को ग्रामीण जीवन से बड़ा लगाव है और उन्होंने ग्रामीण समाज के दुःखों एवं पीड़ाओं को निकटता से देखा और समझा है। इस अनुभव को कवि ने यथार्थ के साथ कविताओं में स्थान दिया है। इसका संवेदनषील उदाहरण 'दीन कुनबा' नामक कविता है जिसमें गांव के दरिद्र परिवार की गरीबी, असहायता और विवषता का मार्मिक चित्रण किया गया है –

'दीन दुःखी यह कुनबा
जाड़े की ठंड में थरथर कांपता
अपनी चौपारी में बैठा
ताप रहा है कौड़ा।'[9]

केदार की एक कविता 'फिर दाम कमाने चला गया' में पात्र 'चैतु' अपने परिवार को प्रसन्न देखने की लालसा में दिन–रात श्रम करता है। काम करके थककर चूर हुआ चैतु देषी ठर्रा पीकर बेहाषी के आलम में सो जाता है। यहां लक्ष प्रष्न यह है कि इतनी मेहनत करने के बाद उसने यह कमाई उड़ाई क्यों ? कवि स्वयं इस सवाल को उत्तर ढूंढकर उसे इस प्रकार शाब्दिक अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं –

'बीबी, बच्चे, घर की माया
सब की दुनियादारी तज के
सूरज डूबे, छुट्टी पा के ;
जिन्दा रहने से उकता के,
चैतु ने बेहद ठर्रा पी
बेहोषी में मर के सोया।'[10]

कवि ने किसान–मजदूरों की शोषण गाथा को मार्मिक अभिव्यक्ति देने के साथ–साथ इनके श्रम पर आनंद भोगने वाले शोषक वर्ग को घृणित भाव से 'कुत्ते' की उपमा दी है। जिस प्रकार एक कुत्ता दूसरे के हाथ से रोटी छीन लेता है, उसी प्रकार ये शोषक वर्ग गरीबों के मुंह से निवाला तक छीन लेते हैं। इस विषय पर केन्द्रित उनकी कविता 'कुत्ता–कुत्ता है' इस स्थिति का यथार्थ चित्राम उकेरती है। कवि ने भारतीय किसानों और मजदूरों की महाजनों पर निर्भरता को बड़े करीब से देखा है और उनके कभी न उतरने वाले कर्ज से पीड़ित आमजन की व्यथित करने वाली परिस्थितियों को प्रत्यक्ष अनुभूत भी किया है। यह शोषक महाजन वर्ग धन–प्राप्ति की अपार लालसा रखता है और इसकी जीभ सदैव लपलपाती रहती है। इस वर्ग द्वारा दिया गया ऋण कभी नहीं उतरता है। कवि इस यथार्थ को इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

'वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन
गौरव के गोबर गणेष सा मारे आसन
नारिकेल से सिर पर बांधे धर्म मुरैठा –
ग्राम बधूटी की गौरी–गादी पर बैठा
नागमुखी पैतृक सम्पति की थैली खोले।'[11]

ग्राम्य जीवन में मुख्य शोषक वर्ग महाजन है तो नगरीय जीवन में यही भूमिका मिल मालिक निभाता है। कवि कहते हैं कि इन मिल मालिकों का पेट जितना बड़ा होता है, धन की भूख भी उतनी ही बड़ी होती है। ये अपने धन की भूख मिटाने के लिए अत्याचार, अनीति और शोषण का सहारा लेते हैं। कवि इसका वर्णन इन शब्दों में करते हैं –

'मिल मालिक का बड़ा पेट है। बड़े पेट में बड़ी भूख है
वही भूख में बड़ा जोर है। बड़े जोर में जुलुम घोर है
मिल मालिक का बड़ा पेट है। अत्याचारी नीति धारता
शोषण का कटु दांव मारता। गला काट पंजा पसारता
मिल मालिक का बड़ा पेट है। मजदूरों को नहीं छोड़ता
उन्हें चूसकर तोष तोलता। एकाकी ही स्वर्ग भोगता।'[12]

पूंजीवादी शोषण पर कवि ने अनेक कविताओं की रचना की है। 'पूंजीपति और श्रमजीवी' कविता में कवि ने पूंजीपतियों के संस्कारों का यथार्थ उदाहरण प्रस्तुत किया है। पूंजीपति वर्ग अपनी आने वाली पीढ़ी को शोषणपरक सीख ही देता है। वहीं दूसरी ओर श्रमजीवी वर्ग अपनी संतानों को उपकार भावना और मेहनत करने की सीख देता है। कवि लिखते हैं –

'पूंजीपति अपने बेटे को
बेहद काला दिल देता है
गद्दी पर बैठे रहने को
भारी भरकम तन देता है।'[13]

आधुनिक सभ्यता का मूल आधार श्रमिक वर्ग अत्यन्त दीन स्थिति में अपना जीवन बसर कर रहा है और उसको पूरे दिन भर हाड़तोड़ परिश्रम करने के उपरांत केवल अधपेट भर रोटी ही मिल पाती है। इस यथार्थ को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है –

'खाते हैं पेट की थैली में गाड़ते,
रोटी के टुकड़ों को दांत से काटते।
मांजते हैं बरतन,
नंगी ही धरती पर सोते हैं
कांखते–हांफते,
रोज की बदबू में सड़ते हैं दुनिया की।'[14]

केदार ने वर्ग विषमता को चित्रित करते हुए यह सिद्ध किया है कि श्रमजीवी वर्ग के श्रम का प्रतिफल शोषक वर्ग भोगता है। इस विडम्बना को कवि ने इन शब्दों में उकेरा है –

'वह दिन भर मेहनत करते हैं,
पत्थर लोहे से लड़ते हैं,
लड़ते लड़ते घिस जाते हैं,
घिसते घिसते मिट जाते हैं
तब पाते हैं,
अपनी रोटी, अपना चिथड़ा,
अपना दरबा।'[15]

समाज में व्याप्त वर्गीय वैषम्य में शोषित किए जा रहे वर्गों में मजदूर–किसान के जीवन–संत्रास को चित्रित करने के साथ–साथ एक ऐसे उपेक्षित वर्ग नारी के शोषित जीवन को कवि केदार ने अपने काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान की है –

'पैदा हुई गरीबी में
पाली गई गरीबी में,
ब्याही गयी गरीबी में
माता हुई गरीबी में।।
सब दिन पिसी, गरीबी में,
सब दिन लड़ी गरीबी में।।
बुड्ढी हुई गरीबी में,
आंधी उठी गरीबी में,
दीपक बुझा गरीबी से।।
जहरी गयी, गरीबी है।
अब भी वही गरीबी है।
चिन्तामयी गरीबी है।
नहीं मिटी है, नहीं मिटी।।'[16]

इस प्रकार केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में समाज में मानवीयता एवं समता की स्थापना करने के लिए शोषित एवं उपेक्षित वर्ग की निम्न परिस्थितियों को उजागर करते हुए इन्हें मानवीय गरिमा प्रदान करने का प्रयास किया गया है। कवि ने ग्राम्य जीवन की विषमताओं और शोषित वर्ग के दुःख–दैन्य के यथार्थ चित्राम उकेरे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि केदार का वैचारिक चिन्तन समाज में मानवीय भावों का संचार करने तथा समतामूलक समाज की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है और वे अपनी कविताओं में इस हेतु समुचित भावाभिव्यक्ति भी करते हैं।

डॉ. अषोक त्रिपाठी ने 'कहें केदार खरी खरी' की भूमिका में उचित ही लिखा है – 'केदार धरती के कवि हैं। खेत खलिहान, कारखाने और कचहरी के कवि हैं, इन सबकी पीड़ा, दुःख–दर्द, संघर्ष और हर्ष के कवि हैं। वे पीड़ित और शोषित मनुष्य के पक्षधर हैं। वह मनुष्यता के कवि हैं। कविता में मनुष्य तथा मनुष्यता की तलाष के कवि हैं। वह मनुष्य बनना चाहते हैं – देवत्व उनकी कामना नहीं है क्योंकि 'परम स्वारथी देव सब' मनुष्य बनना और मनुष्य बनाना ही उनके जीवन की और कवि कर्म की सबसे बड़ी साध है तथा साधना भी।'[17]

इस प्रकार केदार का काव्य शोषण आधारित व्यवस्था को समाप्त कर उसके स्थान पर समतामूलक समाज की स्थापना करने का प्रगतिषील संवेग कहा जा सकता है।

संदर्भ सूची

[1]कु. प्रज्ञा शर्मा : केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रगतिषील चेतना : एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृ. 120
[2]सं. डॉ. अषोक त्रिपाठी : बसन्त में प्रसन्न हुई पृथ्वी, पृ. 74
[3]केदारनाथ अग्रवाल : पुष्पदीप, पृ. 21
[4]केदारनाथ अग्रवाल : पुष्पदीप, पृ. 51
[5]केदारनाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी, पृ. 34
[6]केदारनाथ अग्रवाल : जो षिलाएं तोड़ते हैं, पृ. 102
[7]केदारनाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी, पृ. 69
[8]केदारनाथ अग्रवाल : कहें केदार खरी खरी, पृ. 30
[9]केदारनाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी, पृ. 54
[10]सं. डॉ. रामनिवास शर्मा : श्रम का सूरज, पृ. 81
[11]केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 82
[12]केदारनाथ अग्रवाल : कहें केदार खरी खरी, पृ. 45
[13]केदारनाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी, पृ. 156
[14]केदारनाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी, पृ. 156
[15]केदारनाथ अग्रवाल : जो षिलाएं तोड़ते हैं, पृ. 156
[16]केदारनाथ अग्रवाल : कहें केदार खरी खरी, पृ. 135–136
[17]सं. डॉ. अषोक त्रिपाठी : कहें केदार खरी खरी, पृ. 9